Chap-1

प्रथम अध्याय

राष्ट्रीय चेतना : परिभाषा एवं स्वरूप

१. राष्ट्र और राष्ट्रीयता : परिभाषा एवं स्वरूप

आज के वैज्ञानिक युग की समकालीन परिस्थितियों में राष्ट्रीय चेतना विषयक चिन्तन इस युग की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। अणु-परमाणु आयुधों की होड़, बड़े राष्ट्र द्वारा छोटे राष्ट्रों को हड़पने की होड़ आदि की पृष्ठभूमि में मानवता और राष्ट्रीयता की चर्चा प्रमुख विषय बन गये हैं।वर्तमान युग में 'राष्ट्र' और 'राष्ट्रीयता' दोनों शब्द अत्यन्त प्रसिद्ध एवं प्रचलित हैं फिर भी विद्वानों ने इसे शब्द के लघु आकार-प्रकार में परिभाषित करने में अत्यन्त कठिनता का अनुभव करते हुए [1]उनकी भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ की है। अतः राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप निर्धारण से पूर्व 'राष्ट्र'और राष्ट्रीयता' का सही अर्थ समझना आवश्यक प्रतीत होता है।

'राष्ट्र' की मूल परिकल्पना मनुष्य की उदात्त भावना से प्रेरित है। सह-अस्तित्व एवं परस्पर सहयोग की भावना से राष्ट्र की अवधारणा साकार हुई है। अद्यावधि 'राष्ट्र' के सम्बन्ध में सर्वसम्मत कोई ऐसी एक सुनिश्चित परिभाषा स्थापित नहीं है, जो उसके अर्थघटन को पूर्णतः प्रकाशित कर सके। समय-समय पर उसके अर्थोघाटन में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा जो विचार प्रस्तुत किये गये हैं, वे सब उसके विभिन्न पहलूओं पर प्रकाश डालते हैं। भारतीय शब्द-कोष में 'राष्ट्र' का अर्थ है - राज्य, देश, प्रजा (किसी देश के निवासी लोगों का समुदाय)[2] । वर्तमान सन्दर्भ में 'राष्ट्र' को सामान्यतः अंग्रेजी शब्द 'नेशन' (N2ation) का पर्याय माना जाता है। यह लेटिन शब्द 'नेशो'(Natio) से बना है और इसका अर्थ है जन्म या वंश। युरोप में राष्ट्र की अवधारणा लगभग अठारहवीं शताब्दी से मानी जाती है।[3] श्री गूच महोदय ने फ्रॉंसीसी राज्य क्रान्ति को ही राष्ट्रवाद का जन्मदाता माना है।[4] इस सन्दर्भ में जे. डबल्यू बोर्गीज द्वारा प्रस्तुत व्याख्या भी उल्लेखनीय है - एक जैसी भावनाओं, रीति-रिवाजों, भाषा, साहित्य तथा भौगोलिक एकता से युक्त जनसमूह, एक सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है।[5] पाश्चात्य साहित्य में 'राष्ट्र' शब्द की विभिन्न व्याख्यों में एमर्सन, सटालिन, मिल्टन, वडर्सवर्थ तथा जान स्टुअर्ट मिल जैसे प्रबुद्ध विद्वानों द्वारा प्रस्तुत मत भी उल्लेखनीय है। स्टुअर्ट मिल ने भौगोलिक एकता के अतिरिक्त पूर्वकालिक इतिहास पुरूषों के विचारों की एकता, जाति तथा धर्मगत एकता, समष्टिगत भाषायी चेतना, राजनीतिक लक्ष्यों की एकता आदि को भी राष्ट्रीयता के निर्माण में सहयोगी तत्व माना है। [6] ब्राईस के मतानुसार "राष्ट्रीयता वह जनसंख्या है जो भाषा एंव साहित्य, विचार

प्रथाओं एवं परम्पराओं जैसे बन्धनों से परस्पर इस प्रकार बँधी हुई है कि वह अपनी ठोस एकता अनुभव करे तथा उन्हीं आधारों पर बँधी हुई जनसंख्या से अपने आपको भिन्न न समझे। गिल क्राइस्ट के अभिमत में राष्ट्रीयता व राज्य मिलकर राष्ट्र बनाते हैं।[7]

राष्ट्र के सम्बन्ध में भारतीय चिन्तको एंव विद्वानों के मत भी विचारणीय हैं। 'राष्ट्र' को परिभाषित करते हुए डॉ० सुधीन्द्र ने भूमि, भूमिवासी, जन और जन की सांस्कृतिक समुच्चय को 'राष्ट्र' कहा है।[8] डॉ० विद्यानाथ गुप्त ने 'राष्ट्र' के कतिपय अन्य पक्षों को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि किसी निश्चित भौगोलिक इकाई पर बसा हुआ जनसमुदाय, जिसकी अपनी ही सभ्यता संस्कृति हो, अपनी ही भाषा तथा धर्म हो एंव अपनी ही विधि-निषेध की परम्परा हो 'राष्ट्र' है।[9] डॉ० आबिद हुसेन के मतानुसार - 'राष्ट्र' के लिए किसी जन समुह की राजनीतिक एकता के साथ-साथ सांस्कृतिक एकता का होना भी जरूरी है।[10] उपर्युक्त विचारों के आधार पर यह स्पष्ट है कि 'राष्ट्र' के निर्माण के लिए अधिकांश विद्वानों ने प्रमुख रूप से निम्नलिखित पाँच तत्वों की आवश्यकता पर बल दिया है- निश्चित स्थान या देश, एक जाति, उनकी भाषा, संस्कृाते और धर्म। धीरे-धीरे इन पाँच तत्त्वों के स्वरूप में लचीलापन आया, जिसके परिणाम स्वरूप अब एक निश्चित भू-भाग पर बसने वाला जनसमुदाय, जो एक या एक से अधिक जातियों का जनसमुदाय हो सकता है, उनकी एक या अनेक भाषाएँ हो, वे एक या अनेक धर्म को मानने वाले हो तथा उनकी संस्कृतियाँ एक से अधिक हों और जिसमें अपनत्व अथवा एकानुभूति की भावना हो 'राष्ट्र' की संज्ञा से अभिहित है।[11] डॉ० विष्णु प्रभाकर ने भी उपर्युक्त तत्वों की संकीर्णता के स्थान पर तत्सम्बन्धी उदात्तता को स्वीकार करते हुए कहा है कि "अनेक जातियों का होना, अनेक धर्म मत होना,अनेक भाषाएँ होना, किसी भी दृष्टि से दोष नहीं है। विविधता सौन्दर्य की प्रतीक है लेकिन यह किसी 'एक'का निर्माण करती है। सात रंग मिलकर इन्द्रधनुष की रचना करते हैं।[12]

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीयता के स्वरूप निर्माण में अधिकांश विद्वानों ने भौगोलिक एकता, जनसमुदाय की जातिगत एकता, धर्म एवं भाषागत एकता, राजनीतिक लक्ष्य की समानता एंव सांस्कृतिक साम्यता आदि तत्वों पर अधिक बल दिया है। धीरे-धीरे इन तत्वों की एकता पर अधिक बल न देते हुए तत्सम्बन्धी उदात्तता को विद्वानों ने अब मान्य किया है।

आधुनिक युग की उत्तरोत्तर विकसित भौतिकता और यान्त्रिकता द्वारा हुए युग परिवर्तन के साथ 'राष्ट्र' शब्द का अर्थगत विस्तार भी होता रहा है। सृष्टि की चिरन्तन परिवर्तनशीलता के परिणाम स्वरूप राष्ट्रीयता के लिए अब विद्वानों ने वस्तुमूलक, विचारमूलक एवं भावमूलक आधार को महत्त्वपूर्ण माना है। श्री रोझ के मतानुसार, यह हृदयों की एक ऐसी एकता है, जो एक बार बनकर विघटित नहीं होती है।[13] गिलक्राइस्ट के मतानुसार "एक भूखण्ड पर रहने वाली, एक धर्म, एक भाषा, एक इतिहास रखनेवाली साधारणतः एक जाति में उत्पन्न होने वाली आध्यात्मिक भावना अथवा सिद्धान्त को राष्ट्रीयता कहते हैं।"[14] प्रोफेसर जिर्मन के अभिमत में राष्ट्रीयता एक भावना, विचार तथा जीवन का एक मार्ग है।[15] डॉ० रघुवीर सिंह के मतानुसार 'राष्ट्रीयता' एक भावात्मक शक्ति है, जो नागरिक अधिकारों की रक्षा एंव बाह्य आक्रमण से रक्षा के हेतु सुसंगठित समाज की स्थापना करने में सहायक होती है।हिन्दी के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने राष्ट्र की काव्यमय परिभाषा देते हुए कहा है- कि राष्ट्र के माने उस मिट्टी के नहीं होते जिस मिट्टी पर राष्ट्र बसा हुआ है, न उस आकाश के होते, जो उस पर छाया हुआ है, न उस धन के होते जो उसके पास एकत्रित है, न उस प्रतिभा के होते जिसे वह अपने या औरों पर दिखाकर गर्वित है, किन्तु उस वचन और कृति के माने राष्ट्र होता है जो उसके निवासियों के जीवन से निकली है, उन्मेष बनकर आती है और इतिहास बनकर ठहर जाती है।[16] कुछ लेखको ने इसे वाद नहीं अपितु ऐसे मानवीय धर्म के रूप में पहचाना है, जो देश, जाति अथवा समस्त जीवन से सम्बन्धित होकर सहज साधारणीकरण प्राप्त कर लेता है।[17] इसे धर्म के समान आत्मपरक मनोवैज्ञानिक मन की एक दशा एंव आध्यात्मिक सम्पत्ति मानते हुए इसे विचारने तथा अनुभव करने और रहने की भी एक पद्धति माना है। हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित विद्वान डॉ० गुलाबराय ने राष्ट्रीयता के मान्य पक्षों को स्वीकार करते हुए कहा है कि एक सम्मिलित राजनीतिक ध्येय में बन्धे हुए किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जनसमुदाय के पारस्परिक सहयोग और उन्नति की अभिलाषा से प्रेरित उस भू-भाग के लिए प्रेम और गर्व की भावना को राष्ट्रीयता कहते हैं।[18] इस प्रकार आधुनिक युग में मनुष्य की परस्पर की सहयोग और सहानुभूति की भावना ने राष्ट्रीय भावना को जन्म दिया है। राष्ट्रीयता के स्वरूप निर्धारण में यद्यपि जाति, भाषा, भौगोलिकता आदि का यथेष्ट महत्त्व माना जा सकता है तथापि उसमें एक ओर अतीत के प्रति अनुराग और दूसरी ओर वर्तमान को सुखद बनाने की कामना की भी एक

निश्चित भूमिका की महत्ता होती है। इस प्रकार राष्ट्रीयता एक आन्तरिक प्रवृत्ति है, एक ऐसी चेतना है जिसके प्रस्थान बिन्दु में वैयक्तिकता और विस्तार में विश्व विद्यमान है।[19] शास्त्रीय शब्दों में देश विषयक रति को राष्ट्रीयता कहा जा सकता है। डॉ० कृष्णकुमार बिस्सा ने राष्ट्र के प्रति प्रेम-भावना, ममत्व या अपनत्व के भाव को राष्ट्रीयता कहा है।[20] वास्तव में राष्ट्रीयता को शब्दो में बाँधना कठिन है। भारतीय मनीषि डॉ० गुलाबराय ने राष्ट्रीयता के बाधक और साधक तत्वों के सम्बन्ध में जो विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है इससे स्पष्ट है कि अपने व्यापक अर्थ में राष्ट्रीयता, विश्व-मैत्री की स्थापना में एक महत्त्वपूर्ण सोपान है।

राष्ट्रीयता विषयक विभिन्न मन्तव्यों के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीयता केवल वस्तुमूलक और विचारमूलक नहीं है। राष्ट्रीयता एक अनुभूति है जिसका उद्‌भव मानव-चेतना में होता है। मानव-मन के असंख्य संवेगो, मनोविकारों और मनोभावों के अनुरूप मानव हृदय में प्रेम, धृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोभाव विकसित और उन्नत होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीय भावना भी मानव हृदय में विकसित, आलोकित और उन्नत होती है।[21]

राष्ट्रीयता अनुभूति की गहराईयों से संपृकत है। वह निराकार होते हुए भी केवल अनुभूत्य है, उसमें व्यापक भावनात्मक, आध्यात्मिक एंव मनोवैज्ञानिक शक्ति इतनी प्रबल एंव तीव्र है कि वह सामान्य जन से लेकर सम्पूर्ण राष्ट्र अथवा विश्व उसकी सीमा में आने वाले प्रत्येक बौद्धिक प्राणी पर अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहती।[22] श्री अरविन्द के मतानुसार 'राष्ट्र' ऐसी महाशक्ति है जो राष्ट्र का निर्माण करने वाली कोटि-कोटि जनता की व्यष्टि की शक्तियों का समाविष्ट रूप है।[23]

२) राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप --

जिस प्रकार राष्ट्र और राष्ट्रीयता के अर्थ को शब्दों के लघु आकार में पूर्णतः परिभाषित करना कठिन है, इस तरह 'चेतना' का अर्थ भी अत्यन्त गहन एंव अपरिभाषेय है। अतः विद्वानों ने तत्सम्बन्धी अपनी भिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। कुछ विचारकों ने चिन्तन-प्रक्रिया को ही चेतना कहा है।[24] जबकि डॉ० देवराज पथिक के मतानुसार 'चेतना' एक शक्ति है जो समग्र विश्व में व्याप्त होकर जड़चेतन सबको धारण किये हुए है।[25] डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने चेतना के सूक्ष्म एवं व्यापक स्वरूप

का परिचय देते हुए लिखा है कि यदि हम विश्व को सत्तावान वस्तुओं का सर्वयोग समझते हैं एक नियम नियन्त्रित व्यवस्था भर मानते हैं, तो हमारी चेतना अपूर्ण है, यदि हमारी चेतना यह जान लेती है कि समस्त वस्तुएँ आत्मिक रूप से जुड़ी है और इसीलिए आनन्ददायी है तो हमारी चेतना परिपूर्ण है।[26] वैज्ञानिक युग में चेतना मस्तिष्क का ऐसा गुणधर्म सिद्ध हुआ है जिसके द्वारा मनुष्य अपने चारों ओर के विश्व का संज्ञान प्राप्त करता है और अपने व्यावहारिक क्रिया कलाप को सोद्देश्य बनाता है। दूसरे शब्दों में चेतना अनुभवकर्ता द्वारा सांसारिक वस्तुओं का यथातथ्य अवलोकन ही नहीं अपितु उनकी परख तथा मूल्यांकन भी है। इस प्रकार मनुष्य की क्रियाशीलता का मेरूदण्ड चेतना ही है। जीवन के उदाम उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा में चेतना न केवल अक्षय प्रेरणा स्त्रोत है अपितु आत्मा की सत्ता का आलोक सूर्य भी है। [27]चेतना का विस्तार व्यक्ति से मानवता तक की असीम भाव-भूमियों का संस्पर्श करता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चेतना के विभिन्न स्वरूप, व्यक्तिगत स्तर पर पारिवारिक,सामाजिक तथा देश और राष्ट्र के स्तर एंव विश्व के समूचे स्तर पर पाये जाते हैं। इस प्रकार मानव-जीवन और समाज में चेतना अनेक रूपों में अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होती है।अपने समग्र रूप में वह सत्य,शिवम् और सुन्दरं की कल्याणकारी शक्ति है।

व्यक्तिगत स्तर से ऊपर उठकर परिवार, समाज, जाति, धर्म आदि सारे सोपानो को पार करती हुई चेतना की असंख्य धाराओं का समूचा प्रवाह, राष्ट्रीयता के उच्च्च शिखरों को स्पर्श करते हुए राष्ट्र की स्वतन्त्रता, अखण्डता और प्रभुता को अक्षुण्ण बनाये रखने में पूरे वेग से जब गतिमान होती है तब वह राष्ट्रीय चेतना का रूप धारण करती है। पराधीनताकालीन आन्दोलन के द्वारा भारत की राष्ट्रीय चेतना समूचे विश्व स्तर में अभिव्यक्त हुई थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात राष्ट्रीय चेतना का धर्म देश में पूर्ण मनुष्यत्व की स्थापना, सहअस्तित्व, सहबन्धुत्व, सहजीवन आदि के गुणों के द्धारा राष्ट्र के विकास का है। अनेक विविधत: के रहते हुए भी भारतीय जीवन-दर्शन में राष्ट्रीय चेतना की अमोघ सत्ता ही सक्रिय है।विगलित मान्यताओं,जड़ रूढ़ियों और मिथ्याडंबरो की त्रासदी, पीड़ा और घुटन को झेलते हुए जनजीवन में आशा और विश्वास के नये क्षितिजों के उद्घाटन में राष्ट्रीय चेतना की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। वस्तुत: चेतना के कारण राष्ट्रीय अनुभितियों की सघनता,सुधारात्मक दृष्टिक़ोण का विस्तार, बहुमुखी प्रगति के बढ़ते दायरे, देशप्रेम की उत्कट अभिलाषा, राष्ट्रीय मान-सम्मान के प्रश्नों

पर त्याग और बलिदान की अनूठीं प्रतिद्वन्दता की अनन्त यात्राओं का श्रीगणेश होता है।[28] राष्ट्रीय चेतना की विशद परिकल्पना में एक महान राष्ट्र के रूप में देश की छबि को उभारने,उसकी प्रगति और विकास के लिए प्रयत्न,उसकी स्वतन्त्रता एवं अखण्डता की रक्षा, धर्म, जाति, भाषा, प्रान्त की संकीर्णता से मुक्ति, देश के गौरवपूर्ण अतीत की ऐतिहासिक एंव सांस्कृतिक स्वरूप के प्रति आस्था, साम्प्रदायिक अन्धविश्वासो, रूढियों के प्रति आक्रोश, सामाजिक एवं धार्मिक संकीर्णता तथा अज्ञानता को दूर करने के लिए संघर्षरत रहना, राजनीतिक अव्यवस्था, अभाव, अनास्था, कुण्ठा, भ्रष्टाचार, आतंकवाद आदि के प्रति क्षोभ और आक्रोश आदि निरूपित होते हैं।

हमारे देश की राष्ट्रीय चेतना अपने दिव्य आलोक से अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित है। इसमें विश्व मानवता के कल्याण की शाश्वत भावना निहित है। हमारी राष्ट्रीय चेतना की अमर ज्योति विश्व अन्धेरे में भटकती मानवता को नवचेतना का अमृत पान करा सकेगी ऐसा विश्वास किया जाता है। स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय चेतना जनतन्त्र में दृढ आस्था और विश्वास रखती है।

'राष्ट्रीय चेतना' के स्वरूप निर्धारण से सम्बन्धित उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इसका सम्बन्ध अन्य भावात्मक एंव विचारात्मक पक्षों के साथ भी जुड़ा हुआ है। ऐसे निकटतम पक्षों के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप को अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

३) राष्ट्रीय चेतना और देशभक्ति -

राष्ट्रीय चेतना और देशभक्ति दोनों ही देश के प्रति भावात्मक अनुभूतियों से सम्बन्धित हैं। दोनों में इतनी अधिक समानता है कि कई बार दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची से जान पड़ते हैं। देशभक्ति और राष्ट्रीय चेतना मूलतः एक ही प्रतीत होती हैं, क्योंकि दोनों ही स्थितियों में ही देश और उसके प्रति अपनत्व विद्यमान है। लेकिन दोनों के बीच सूक्ष्म अन्तर भी है। यूँ तो दोनों का ही अर्थ-बोध देश की स्वतन्त्रता, अखण्डता एंव समृद्धि का परिचायक है।[29]

राष्ट्रीय चेतना के अन्तर्गत देश की भूमि, भूमि के निवासी एंव भूमि पर बसे जन की संस्कृति के प्रति प्रत्यक्ष एंव परोक्ष, दोनों ही रूपों में प्रगति एंव विकास का भाव ध्वनित होता है। राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित होकर मनुष्य, देश में अशिक्षा,

अज्ञानता, अभाव, वैषम्य, अनाचार, चरित्रहीनता, संकीर्णता, विलासिता, अतिभौतिकता अतिपरम्परावादिता , स्वार्थ परायणता , आत्मकेन्द्रियता आदि अनेक विकृतिय्रों से विचलित होता है। उसमें असन्तोष, धृणा, रोष, आक्रोश और क्रॉति का भाव पनपने लगता है, इसी मानसिकता को राष्ट्रीय चेतना कहा जा सकता है।[30]

देश प्रेम, मावन-हृदय के एक स्वाभाविक प्राकृत-भाव का नाम है। जिस प्रकार एक बच्चे के हृदय में सहज ही अपनी माँ के प्रति प्रेमपूर्ण भाव होते है, वैसे ही अपनी जन्मभूमि के प्रति भी मानव-हृदय सहज आसकत होता है।इस स्वाभाविक प्रेम सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए डॉ० प्रेमलता बाफना का कहना है - कि "मनुष्य के हृदय में अपने देश के प्रति स्वाभाविक रूप से प्रेम होता है। जन्म से ही अपनी मातृभूमि के प्रति उसके मन में बहुत अधिक श्रद्धा-भक्ति और आदर की भावना रहती है।....... मातृ भूमि के प्रति उसका यह असीम प्रेम उस समय और भी ऊँचाई पर पहुँच जाता है जब उसके प्यारे देश के गौरव को धब्बा लगता है, उसके देश का स्वाभिमान आहत होता है अथवा उसके देश को कोई दबाना चाहता है ऐसे समय में उसका देश-प्रेम प्रकट रूप से सामने आता है।"[31]

देशप्रेम, भाव की प्रगाढ़ता और प्रधानता के कारण सीमित ज्ञान के रहते हुए भी सम्भव है जबकि राष्ट्रीय चेतना के लिए तत्सम्बन्धी ज्ञान की परम आवश्यकता रहती है। अतः राष्ट्रीय चेतना मुख्य रूप से ज्ञानयुक्त विवेक से परिचालित होती है और देशभक्ति प्रधानतः भावना से।[32] देश के प्रति त्याग, समर्पण और बलिदान की अनुगूंज देशभक्ति की अनिवार्य शर्त है। जबकि राष्ट्रीय चेतना में बलिदान का भाव आवश्यकतानुसार ही प्रस्फुटित होता है। [33] राष्ट्रीय चेतना की अनुभूति देशभक्ति की सघनता के कारण अधिक प्रखरतायुक्त होती है। इसी प्रकार देशभक्ति को सही दिशानिर्देश राष्ट्रीय चेतना से मिलती है। अतः राष्ट्रीय चेतना और देशप्रेम एक-दूसरे के पूरक कहे जा सकते हैं। एक के अभाव में दूसरे की परिकल्पना और सफलता सम्भव नहीं है। दोनों के गहन सम्बन्ध को ध्यान में रखकर डॉ० देवराज पथिक का कहना है कि राष्ट्रीय चेतना जिस देश में जितनी गहरी अनुप्राणित रहती है, उसकी देशभक्ति का उछाल भी उतना ही उन्नत और ऊँचा देखा जा सकता है।[34]

राष्ट्रीय चेतना द्वारा हम अपनी मातृभूमि से प्रेम करना सिखते हैं। इतना जरूर है कि देश भक्ति की सघनता ही राष्ट्रीय भाव को वाणी देती है। देशभक्ति के कारण हम अपने देश के कण-कण, तृण-तृण से अनुराग भाव से अनुप्राणित हो

उठते हैं। मातृभूमि का पार्थिव-अकृत्रिम सौन्दर्य अपनी समस्त चेतनाओं के साथ हमारे अंतराल का स्पर्श कर उठता है। हमारे प्राचीन साहित्य के पृथ्वी सुक्त में मातृ-भूमि के दिव्य और विराट रूप के साथ मानव ह्रदय की रागात्मक अनुभूति को इस प्रकार निरूपित किया गया है--

यते मध्यं पृथिवि यच्चनभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्व: संबभूतु: ।

तासु नो धेहि अभि न: पवस्व माता भूमि: पुत्रो हं पृथिव्या: ।।[35]

देश प्रेम के अनिवार्य तत्व के रूप में अतीत का गौरव गान, सांस्कृतिक मूल्यों की व्यापक प्रतिष्ठा, युग चेतना का पुनर्जागरण, देश के स्थूल और सूक्ष्म स्वरूपों के प्रति रागात्मक भावना, मातृभूमि का यशोगान, विघटनकारी प्रवृतियों, देशद्रोहियों और कृत्रिम अभाव के मूल स्त्रोतों के प्रति आक्रोश और वितृष्णा के स्वर, रूढ़ियों मृत-मान्यताओं, निर्जीव परम्पराओं का विरोधपरक स्वरूप आदि प्रमुख है। देशभक्ति में देश-रक्षा का भाव मुख्य रहता है। देश की स्वतन्त्रता और अखण्डता की रक्षा का मूल स्वर देश-भक्ति का प्राणतत्त्व है। इस प्रकार देश भक्ति उत्कृष्ट राष्ट्र प्रेम की सार्थक पहचान बनाने वाली अद्वितीय ऊर्जा है। अत:कहा जा सकता है कि देशभक्ति एक ओर राष्ट्रीय चेतना की मानसिकता के निर्माण में सहायक है तो दूसरी और राष्ट्रीय चेतना देशभक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। [36]अब समय कह रहा है कि देशभक्ति का अस्तित्व ही राष्ट्रीयता नहीं है।[37]आधुनिक युग में राष्ट्रीयता के निर्माण में, रूधिर की पुकार नहीं, एक विचार की शक्ति ने प्रमुख कार्य किया है।[38] डॉ० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र के अनुसार राष्ट्रीयता मूलत: एक भावना है जो देशप्रेम से अनुप्राणित होती है।[39] निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय भावना और देशप्रेम दोनों एक नहीं है, फिर भी दोनों के बीच निकट का सम्बन्ध है। राष्ट्रीयता एक निर्मल और पुनीत भाव है जिसमें देशानुराग सदैव प्राणवान रहता है।

४)राष्ट्रीय चेतना और राजनीति --

राष्ट्रीय चेतना और राजनीति इन दोनों का घनिष्ट सम्बन्ध है। राजनीति से तात्पर्य है शासन व्यवस्था। राजनीति का मुख्य लक्ष्य होता है राष्ट्र की आन्तरिक शान्ति, सुखाकारी और समृद्धि तथा बाह्य आक्रमण से देश की पूर्णत: सुरक्षा करना। राष्ट्रीयता और राजनीति परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित है। राजनीति किसी

भी राष्ट्र का वह आधार या मेरूदण्ड है, जिस पर राष्ट्र का सर्वस्व आधारित होता है। यदि राजनीति विशुद्ध न हुई तो राष्ट्र का पतन निश्चित होता है।[40] गुलामी की अवस्था में देश के निवासियों का चरम उद्देश्य होता है, देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करना। परतन्त्र देश में राष्ट्रीयता से तात्पर्य होता है स्वतंत्रता प्राप्ति की आकांक्षा।[41] इसके लिए सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक उत्थान के साथ स्वतन्त्रता प्राप्त करना राष्ट्रीयता का अंग होती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात देश की जनता के पालन-पोषण की व्यवस्था, उनकी सुखाकारी शान्ति की व्यवस्था एंव स्वास्थ्य की रक्षा के उत्तरदायित्व का निर्वाह राजनीति के अन्तर्गत गृहनीति के द्वारा होता है। आदर्श गृहनीति में सदैव बहुजनहित के लिए यत्न किये जाते हैं। इसके लिए शासनतन्त्र में विशेष प्रविधियाँ एंव नियम अंकित हैं। इसके अतिरिक्त समाज के विभिन्न वर्गो के लोगों के बीच परस्पर सौहार्द बनाना, व्यक्तिगत एंव सामूहिक विकास के लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध करवाना, देश के भौगोलिक स्वरूप और सम्पत्ति की सुरक्षा का प्रबन्ध करना, उसके सांस्कृतिक गौरव की वृद्धि करना तथा बाह्य आक्रमण से देश की रक्षा करना आदि राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं। इन सब के लिए जिन विचारधाराओं का आधार लेकर व्यवस्थाएँ सुनियोजित की जाती है, उसे राजनीति कहा जा सकता है। समय-समय पर राजनीति देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों के अनुरूप बदलती रहती है। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की राजनीति लोकतान्त्रिक समाजवाद, गाँधीवादी विचारधारा, मार्क्सवादी विचारधारा आदि अलग-अलग विचारधाराओं पर आधारित रही है। स्वतन्त्रता पूर्व भारत की राजनीति में सामन्तवाद, पूंजीवाद आदि का व्यापक प्रभाव था।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय राजनीति में जो धृणित परिवेश समाहित हुए हैं, वे राष्ट्र के विकास में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। आज की राजनीति में जातीयता की राजनीति, साम्प्रदायिकता की राजनीति, अनुवंशिकता की राजनीति, शहरी और ग्रामीण राजनीति तथा आन्दोलनकारी नीतियाँ आदि आज वर्तमान राजनीति को अपनी परिधि में समेटे हुई हैं। आज राजनीति इन्हीं परिधि के इर्द-गिर्द घूमती प्रतीत होती है।[42] परिणाम स्वरूप देश की जनता में राष्ट्रीयता की भावना कभी तीव्र और मन्द प्रतीत होती है। मूलत: प्रत्येक राष्ट्रीयता का उद्देश्य एक राज्य की स्थापना तथा उसका चरम विकास करना होता है। ऐसी दशा में राजनीति राष्ट्रीयता की सहायिका बन जाती है और उसको नित्य विकसित करती रहती है।[43]

इस प्रकार राजनीति को राष्ट्रीयता का एक अंग कहा जा सकता है। राजनीति का सम्बन्ध देश के भौतिक पक्षों से अधिक है जबकि राष्ट्रीय चेतना का सम्बन्ध जनता की ज्ञानयुक्त भावनाओं के साथ रहता है। राजनीति शासन तन्त्र से सीधा सम्बन्ध रखती है जबकि राष्ट्रीय भावना जन-मन से जुड़ी हई है। राजनीति में देश के लोगों को एक-दूसरे से जोड़े रखने वाली विकसनशील विचारधाराओं का सुव्यवस्थित आयोजन रहता है।राष्ट्रीय चेतना किसी भी विशेष विचारधारा पर अवलम्बित नहीं रहती है।

५) राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रभाषा --

भाषा की एकता या समानता भी राष्ट्रीयता के निर्माण की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण तत्व माना गया है क्योंकि सामान्य भाषा द्वारा ही एक देश का जनसमुदाय परस्पर अपने विचारों तथा भावनाओं को सुविधापूर्वक अभिव्यक्त कर सकता है। परिणामत: इनमें सुदृढ़ सम्बन्धों की स्थापना हो जाती है। यदि भाषा की एकता न हो तो एक ही देश-प्रदेश के विभिन्न लोगों को परस्पर सम्पर्क स्थापित करने में अत्याधिक असुविधा उत्पन्न होती है। भाषा की विविधता के कारण एक ही प्रदेश के लोगों में परस्पर उदासीनता के साथ-साथ रागात्मक सम्बन्धों में उतनी निकटता नहीं स्थापित हो सकती है, जो समान भाषा के कारण सम्भव है। यह मनोवैज्ञानिक रूप से विद्वानों द्वारा मान्य रहा हैं।

भावात्मक एकता के बिना न राष्ट्र की परिकल्पना ही चिरस्थायी बन सकती है और न राष्ट्र भाषा की। वही भाषा राष्ट्र भाषा की अधिकारिणी होती है जो एकान्वयन में पूर्णत: सक्षम हो। आदर्श और साधना की एकता मनुष्य को एक मंच पर अवश्य एकत्र कर देती है, परन्तु भाषा की विभिन्नता मनुष्य की इस एकता को भावात्मक नहीं बनने देती।

भाषा की वैविध्यता के बावजूद हमारे देश में राष्ट्रीय चेतना की एक गहन और भावात्मक अनुभूति लक्षित होती है जो हमारी राष्ट्रीयता की एक प्रमुख विशेषता है। स्वाधीनता आन्दोलन के द्वारा राष्ट्रीय चेतना जैसे-जैसे जोर पकड़ती गयी वैसे-वैसे भाषा की एकता का अभाव भी देश-भक्तों द्वारा अनुभत होने लगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन को सफल बनाने में उद्देश्य राष्ट्रीय रंगमंच पर समान भाषा की अनिवार्यता का अनुभव किया गया।अत: समूचे देश के लोगों ने हिन्दी को

राष्ट्रभाषा के रूप में चित्रित किया। केशवचन्द्र सेन, बंकिमचन्द्र चट्‌टोपाध्याय, विनोबा भावे, अरविन्द, महात्मा गाँधी जी आदि सभी देशभक्तो एवं बुद्धि जीवियों ने हिन्दी के माध्यम से जनचेतना जगाने का कार्य किया।[44] संविधान सभा में हिन्दी को राष्ट्र भाषा और देवनागरी को राष्ट्र लिपि के रूप में मान्यता देने का प्रस्ताव रखनेवाले दक्षिण भारत के नेता और विद्वान गोपाल स्वामी आयंगर थे।[45]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के संकल्प को पूरा करने के लिए स्वराज आन्दोलन, साम्प्रदायिकता का विरोध, स्वदेशी आन्दोलन के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के जिन आन्दोलनो को राष्ट्रीय भावना के विकास में सहायिक माना गया उनमें राष्ट्रभाषा आन्दोलन बड़े महत्व का रहा है।[46] राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय कांग्रेस की स्थापना के बाद इस कार्य में तीव्रता आ गई, और जब कांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गाँधी जी के हाथों में आया तब उन्होंने राष्ट्रभाषा के प्रचार के कार्य को भी अन्य राष्ट्रीय कार्यो के साथ जोड़ दिया। सन् १९०९ ई० में गाँधीजी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में लिखा था "सारे हिन्दुस्तान के लिए हिन्दी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए।" ५ जुलाई १९२८ के 'यंग इंडिया' में तो उन्होनें कहा कि "मैं यदि तानाशाह होता तो आज ही विदेशी भाषा में शिक्षा का दिया जाना बन्द कर देता। जो आनाकानी करते उन्हें बर्खास्त कर देता। मैं पाठ्य पुस्तकों को तैयार किये जाने का इन्तजार न करता"[47] वे विदेशी भाषा की प्रभुसत्ता को राष्ट्रीय हितों के प्रतिकूल मानते थे। वे जानते थे कि विदेशी भाषा पराधीनता की भावना को पुष्ट करती है और देश के आत्मगौरव को कुचलने में लगी है। राष्ट्रीय जागृति और भारतीयता की भावना को उभारने के लिए निज की भाषा की भूमिका से वे भली भाँति परिचित थे।[48] प्रेमचन्द जी का भी यह मानना था कि जिस दिन हम अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व तोड़ देंगे और अपनी एक कौमी भाषा बना लेंगे, उसी दिन हमको स्वराज्य के दर्शन हो जाएगे।[49] जाहिर है प्रेमचन्द जी, राजनीतिक स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए विदेशी भाषा के प्रयोग के रूप में मानसिक दासता को त्यागना जरूरी समझते थे।

राष्ट्रीय जागरण से सम्बन्ध रखने वाले सभी संगठनो ने हिन्दी भाषा को ही सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया। आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज और थोयोसोफिकल सोसाइटी आदि इस प्रकार के अत्यन्त महत्वपूर्ण संगठन समझे जा सकते हैं।

हिन्दी भाषा राष्ट्रीय एकता की बड़ी सशक्त कड़ी रही है और आगे भी रहेगी। इसका उदय और विकास राष्ट्रीय जागरण के समानान्तर सहज रूप में इस प्रकार हुआ है कि यह सबको जोड़ने वाली एक भाषा बन गई है। अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करती रही है और सभी क्षेत्रो, धर्मो, वर्गो, जातियों एवं श्रेणियों के लोगों ने इसे अपनाया और अर्घ्यदान दिया है। इसीलिए यह किसी सम्प्रदाय-विशेष अथवा प्रदेश विशेष की भाषा न होकर सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा है।राष्ट्रवाणी के बिना राष्ट्र मूक होता है इसीलिए राष्ट्रीय जागरण राष्ट्रवाणी के उत्थान का भी पर्याय बना है।

आज स्वतन्त्रता के पचास साल बाद हमारा देश जिन अलगाववादी प्रवृत्तियों से संघर्ष कर रहा है, उनमें भाषावाद भी प्रमुख है। इसका आधारभूत कारण राष्ट्रीयता की भावना का विघटन है। स्वाधीनता संघर्ष के दौरान और आज की हमारी मानसिकता में एक सुस्पष्ट अन्तर दिखाई देता है। उस समय सारा देश आज़ादी के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भावात्मक एकता के सूत्र में बंधा हुआ था। हमारा लक्ष्य था भारत माता की मुक्ति।

आजादी के बाद हम अन्तरराष्ट्रीय बनने की हवा में ऐसे बहे कि हमारी राष्ट्रीयता क्षीण ही नहीं हुई बल्कि हम राष्ट्रीयता और स्वभाषा प्रेम को पिछडेपन का लक्षण मानने लगे। राष्ट्रीयता को अन्तर्राष्ट्रीयता की विरोधी बताकर इस कदर प्रचारित किया गया कि राष्ट्रीयता नाम लेने में भी हमें आत्महीनता का अनुभव होने लगा।[50] इसी मानसिकता से ग्रस्त होकर हम स्वदेशी भाषाओं की उपेक्षा कर अन्तर्राष्ट्रीय मानी जानेवाली अंग्रेजी भाषा के मोहपाश में बन्ध गये। अंग्रेजी भाषा का प्रभाव हमारे मन पर इतना हावी हो गया है कि आज हम अपनी हिन्दी भाषा को उसके समक्ष तुच्छ और महत्त्वहीन मानने लगें हैं। अज्ञेय ने इस विषय पर ठीक ही कहा है कि जब हम राजनीतिक दृष्टि से पराधीन थे तब तो हमारे पास स्वाधीन भाषा थी, परन्तु आज जब हम स्वाधीन हो गये हैं तो हमारी भाषा पराधीन हो गयी है[51] आज हम स्वंय आत्महीनता से ग्रस्त होकर अंग्रेजी भाषा को स्वेच्छा से अपनाकर गर्व का अनुभव करते हैं। इस विदेशी अंग्रेजी भाषा के बढ़ते हुए खतरे का मुकाबला करने के लिए यह जरूरी है कि हम भारतीय भाषाओं के बीच आदान-प्रदान द्वारा भाषाई सद्भाव और एकता स्थापित करने का प्रयास करें। हिन्दी भाषा, अंग्रेजी भाषा की विरोधी नहीं हैं परन्तु भारत गॉवों का देश है और आज भी हिन्दी यहाँ सभी भाषाओं के बीच एकता स्थापित करने के लिए सेतु का कार्य करती है। एक स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए यह कितना

दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम आज विदेशी भाषा का समर्थन और अपनी हिन्दी भाषा का विरोध कर रहे हैं।

६) राष्ट्रीय चेतना और साहित्य --

राष्ट्रीय चेतना के प्रचार और प्रसार में साहित्य का योगदान अपने आप में एक विचारणीय एंव विवादास्पद प्रश्न है। जीवन की समग्र अभिव्यक्ति का माध्यम साहित्य है। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। साहित्य में समाज पूर्णरूपेण प्रतिबिम्बित होता है। अत:साहित्य अपनी युगीन भावनाओं की अनुकृति होती है।[52] वर्तमान युग में समकालीन परिस्थितियों से उभरती हुई विविधमुखी चेतना को मुखर बनाना साहित्यकार का धर्म है। साहित्य एक ओर जीवन से उद्वेलित होता है, उससे प्राणतत्व ग्रहण करता है तो दूसरी ओर वह स्वंय जीवन को रसवत्ता प्रदान कर उसी को दिशा निर्देश भी देता है। इस प्रकार साहित्य नियन्ता और नियामक दोनों ही है।[53] लोकमंगल और कल्याण की आकांक्षा को साकार करने के लिए साहित्य-सर्जक, साहित्य-साधना में रत रहता है।

संस्कृति का प्रमुख अभिवक्ता साहित्यकार, राष्ट्र का अपेक्षाकृत अधिक जागरूक पहरेदार होने के नाते परोक्ष-अपरोक्ष रूप से राष्ट्र की संस्कृति,परिस्थितियों एंव गतिविधियों का चित्रण शिवत्व की परिधि में करता रहता है।[54] साहित्य,राष्ट्र की तपस्या है, वह जीवन के अनन्त प्रयोगों की सिद्धि है और समस्त सम्वेदनाओं का साररूप है।[55] राष्ट्र की आकांक्षाओं के सोपानों को चढ़ने के लिए दार्शनिक प्लेटो ने राष्ट्र के विकास की भारी जिम्मेदारी कवियों को सौंपी थी।[56] राष्ट्र का निर्माण करने में वही साहित्य समर्थ रहता है जिसमें मानवीय सम्वेदनाओं के स्पंदनों की धड़कन एकाग्रता और निष्ठा के साथ झंकृत रहती है। साहित्य मानव जाति की साधना और ज्ञानयात्रा का उत्कर्ष है। शाश्वत यथार्थ और सत्य के अस्तित्व को मुखर करनेवाला साहित्य,किसी राष्ट्र के उत्थान और उत्कर्ष में अमर भूमिका निभा सकता है। वस्तुत: साहित्य अपने असली रूप में सार्वकालिक, सार्वभौमिक और सार्वदेशिक सत्ता की अखण्डता का दूसरा नाम है।[57] राष्ट्रीय परिवेश का व्यापक आरोहावरोह का प्रतिबिम्ब राष्ट्रीय चेतना में प्रस्फुटित और विकसित होता है। मानव मात्र सम्पूर्ण विश्व में एक ही सम्वेदना का चरम आलोक है,उसकी नियति भी विखण्डित नहीं है। इसी चरम धरातल

के परिप्रेक्ष्य में यदि आज के सर्जक राष्ट्रीय चेतना का निर्माण करने का संकल्प करते हैं तो निश्चय ही उनके साहित्य में मानवीयता का व्यापक और असीम प्रकाशपुंज प्रस्फुटित होगा।[58] आज के बौद्धिक युग की परिस्थितियों में यह नितान्त आवश्यक है कि साहित्यकार राष्ट्रीय चेतना की अनुभूति और वैचारिक सत्ता को विश्वजनीन बनाने की दृष्टि से रचना-कर्म में दीक्षित हो।

भारत में राष्ट्रीय भावना के विकास के सम्बन्ध में विद्वानों के अलग-अलग मत प्रवाहमान है। कतिपय विद्वान इसे अत्यन्त प्राचीन मानते हैं तो अधिकांश विद्वानों ने अंग्रेजों के शासनकाल में स्वाधीनता प्राप्ति की आकांक्षा के साथ ही राष्ट्रीय चेतना के प्रवाह का गतिमान होना माना है। यह निर्विवाद रूप से सर्वमान्य है कि स्वाधीनता के लिए किये गये आन्दोलन ने राष्ट्रीय भावना को जन-मन में जागृत किया। राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा में निष्ठावान देश भक्तों ने धार्मिक और जातीय संकीर्णता को कुचलकर जन-सामान्य में राष्ट्रीय चेतना के निर्माण का पूरा प्रयास किया। गाँधीजी के नेतृत्व में बीसवीं शताब्दी में देश के निष्ठावान और जागरूक राजनीतिज्ञों एंव समाज सुधारको के महत्वपूर्ण योगदान के साथ-साथ साहित्य-सर्जको ने पूरी निष्ठा से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । राष्ट्रीय भावना के प्रसार-प्रचार में देश की दयनीय दशा, अशिक्षा, बेकारी, अनैतिकता, धार्मिक वैमनस्यता आदि का प्रभावशाली निरूपण अपनी ओजस्वी वाणी में करके जन-जागृति में साहित्यकारों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। काश्मीर से कन्याकुमारी और राजस्थान से बंगाल तक समग्र देश को स्वतन्त्रता आन्दोलन द्वारा एक सूत्र में बाँधने का कार्य उस युग के हिन्दी साहित्य ने किया है।

राष्ट्रीय भावना का जो विस्तार स्वाधीनता आन्दोलन द्वारा प्रारम्भ हुआ, वह स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की अखण्डता और गौरव की सुरक्षा, राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान, साम्प्रदायिकता का विरोध, देश की समृद्धि के लिए यत्न, सामाजिक आर्थिक शोषण के प्रति आक्रोश आदि की अभिव्यक्ति द्वारा आज भी व्याप्त है। देश के गौरव के लिए जन-मन में त्याग, बलिदान और साहस की अदम्य आकांक्षा भरने का कार्य आधुनिक साहित्य ने किया था। साठोत्तरी हिन्दी साहित्य के निर्माण, उसमें अनुभूत अवरोध एवं उसके बदलते हुए स्वरूप की अभिव्यक्ति करता है।

७) राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता --

आज विश्वस्तर पर अन्तर्राष्ट्रीयता की महत्ता एंव प्रभावात्मकता बनी हुई है। अन्तर्राष्ट्रीयता की कल्पना अपने मूल उद्देश्य में विराट और सुखद है, पर यथार्थ और सत्य नहीं है। प्रथम दो विश्वयुद्ध के विनाशकारी परिणामो से सचेत होकर मानव-सृष्टि को नष्ट होने से बचाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीयता की महत् कल्पना को साकार अवश्य किया गया, लेकिन सर्वविदित है कि आज भी विकसित देश, अर्धविकसित या अविकसित देशो पर हावी होने का सदा प्रयत्न करते रहे हैं। प्रतियोगिता की भावना विकसित-अविकसित देशों के बीच सदा अन्तर बनाए रखती है। राजनीतिक गतिविधियाँ एंव आर्थिक लाभालाभ की संकुचित दृष्टि देशों के मध्य विवादास्पद संकट की स्थितियों का निर्माण करती है। इस प्रकार आज वैज्ञानिक आविष्कारों की अन्धी दौड़ और अणु-परमाणु ऊर्जा की विनाशक लीला ने समस्त विश्व के राष्ट्रों को मानवता के अस्तित्व की रक्षा के लिए पुन: नये सिरे से सोचने को बाध्य किया है।

आज विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के मध्य परस्पर सद्‌भाव, प्रेम और भाईचारे का सम्बन्ध स्थापित करने के यत्न किये जा रहे हैं। इसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य को जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के अवसर उपलब्ध हो, ऐसे मानवतावादी विचार इनमें निहित है। अन्तर्राष्ट्रीय भावना के विकास के मूल में पारस्परिक द्वेष, मनोमालिन्य, राजनीतिक सीमीओं के विस्तार की लालसा, ईर्ष्या आदि को नष्ट करके परस्पर प्रेम, सद्‌भाव और सह अस्तित्व की मंगलकारी भावनाओं को विकसित किया जाय यह प्रमुख उद्देश्य है। यह एक सरस, सुखद एंव सुनियोजित सम्बन्ध है, जिसका पोषण वैज्ञानिक उपकरणों एंव ह्रदय की विशालता के बीच संभवित है।[59] राष्ट्रीयता का स्वस्थ एंव समृद्ध स्वरूप अपने महान वैचारिक एंव नैतिक आदर्शो के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र विशेष को आत्म-निर्भरता के राजपथ पर अग्रसर बनाने में सहायक होता है। राष्ट्रीयता लोगों को स्पन्दित करने वाली वह साँस है जो मृतप्राय: जाति में भी उत्साह, उमंग और आत्मोसर्ग की अमर-भावना का बीजारोपण करने की क्षमता रखती है। इस प्रकार राष्ट्रवाद न केवल राष्ट्रो की प्रभविष्णु एकता में गूँथने का प्रयत्न करता है, अपितु उसे मनुष्य की सर्वोच्च निष्ठा का लक्ष्य बनाना चाहता है।[60] अत: स्वस्थ राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता की सामयिक आवश्यकता और आकांक्षा के मार्ग में सहायक कही जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीयता और राष्ट्रीयता परस्पर तब विरोधी प्रतीत हो सकते हैं जब

साम्यवादी विचारधारा के अनुरूप अन्तर्राष्ट्रीयता उदाम साम्यवादी चेतना से अनुप्राणित होकर मानव-जीवन के लिए भौतिक साधनों की उपलब्धि या मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति को प्रमुखता देती है। कार्ल मार्क्स की विचारधारा से प्रेरित साम्यवादियों ने रूस में अवश्य ही वर्गहीन समाज की स्थापना सफलता से की, लेकिन प्रेम, औदार्य और सद्भाव के अभाव में विश्वस्तर पर साम्यवाद की सहायता से अन्तर्राष्ट्रीयता की कल्पना को सफल नहीं बनाया जा सकता है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता की अवरोधक सिद्ध हो सकती है। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीयता शान्ति, सहिष्णुता और भ्रातृत्व का एक ऐसा स्त्रोत है जो संकुचित सीमाओं में बन्धे स्वार्थो, सिद्धांतों, भेदभावों तथा हिंसागत विचारों को बहाकर दूर, बहुत दूर इतनी दूर ले जाना है कि विश्व का प्रत्येक प्राणी स्वच्छन्द, भयहीन होकर नित्यकर्मो का समुचित उपयोग कर सके।[61]

दूसरी ओर राष्ट्रीयता की उन्मादीवस्था भी विश्व-कल्याण के लिए अभिशाप सिद्ध होती है। राष्ट्रवाद के उग्र रूप ने जर्मनी में नाझीवाद को जन्म दिया। राष्ट्रीयता का विकृत रूप कमजोर और निर्बल राष्ट्रों के अस्तित्व को सदैव निगलने के लिए अजगर के समान मुँह खोले रहता है और साम्राज्यवाद अपनी लालसा को तृप्त करने का व्यर्थ प्रयत्न करता है। अन्तर्राष्ट्रीय भावना के मूल में यह व्यवस्था निहीत है कि कोई राष्ट्र अपने स्वार्थ या हितों के लिए निर्बल राष्ट्र को दासता की बेड़ियो में न जकड़ सके। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीयता के महान लक्ष्य को पूरा करने के लिए प्रत्येक राष्ट्र अपने राष्ट्रीय विकास के साथ-साथ निर्बल-अविकसित देशों के विकास में प्रेमपूर्ण सहयोग करे। अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास द्वारा स्वस्थ राष्ट्रीयता का निर्माण किया जा सकता है और राष्ट्रीयता द्वारा मानवता के व्यापक हितों की रक्षा करते हुए अन्तर्राष्ट्रीयता के महान यज्ञ को सफल बनाया जा सकता है। [62] अतः राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता एक दूसरे के विरोधी नहीं सहायक कहे जा सकते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय चेतना एक ऐसी सूक्ष्म मनोवृत्ति है जो अनेक अन्य मानवीय वृत्तियों से सूक्ष्म रूप से जुड़ी हुई है। देशप्रेम, राजनीति, राष्ट्रभाषा, साहित्य एंव अन्तर्राष्ट्रीयता आदि राष्ट्रीय चेतना के सहायक अंग हैं। वे अभिन्न रूप से राष्ट्रीय चेतना से जुड़े हुए हैं तथापि इससे कुछ भिन्न हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप निरूपण से सम्बन्धित उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है

कि राष्ट्रीय चेतना मानव-जाति के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। यह निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति के मूल में वहाॅ के निवासियों की राष्ट्रीय चेतना ही सक्रिय रहती है। बुद्धिजीवि साहित्यकार अधिक सम्वेदनशील, विचारशील और सजग होने के कारण राष्ट्रीय चेतना के निर्माण और विकास में महत्वपूर्ण योग देते रहे हैं। यद्यपि साहित्य एक सर्जनात्मक उपलब्धि है अतः साहित्य में राष्ट्रीयता का सीधा और स्थूल प्रचार न होकर राष्ट्रीयता को सर्जनात्मक एंव कलात्मक रूप प्रदान करता है।

-- संदर्भ सूची --

१) The encyclopedia Britenica vol xix - P-272

२) भार्गव आदर्श शब्द कोष - पृ. ५३

३) Hans kohn - The Idea of Nationalism - P-03

४) G.p. Gooch - Studies in modern History - P-217

५) J.W. Borgese - Encyclopedia of the social science - P-32

६) John Stuart Mill - Representative government - P-03

७) श्री रामचन्द्र अग्रवाल - राजनीति शास्त्र के सिद्धान्त - पृ. ८२

८) डॉ० सुधीन्द्र - हिन्दी कविता में युगान्तर - पृ. ३७

९) डॉ० विद्यानाथ गुप्त - हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना - पृ. ०५

१०) डॉ० आबिद हुसेन - भारत की राष्ट्रीय संस्कृति - पृ. ४/५

११) डॉ० सुषमा कश्यप - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना- पृ. २९५

१२) डॉ० विष्णु प्रभाकर - 'आजकल' अगस्त १९७० भावात्मक एकता 'लेख' - पृ. ०५

१३) J.H. Rose - Nationality in Modern History

१४) डॉ० रामचन्द्र अग्रवाल - राजनीतिशास्त्र के सिद्धान्त - पृ. ८२

१५) डॉ० देवराज शर्मा -

१६) माखनलाल चतुर्वेदी - हिन्दुस्तान 'लेख' राष्ट्रीयता की आवश्यकता - पृ. ०९

१७) सत्यदेव विद्यालंकार - राष्ट्र धर्म - पृ. १२१

कमला प्रसाद पाण्डेय - छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ. १२९

१८) डॉ० गुलाबराय - राष्ट्रीयता - पृ. ०२

१९) वही - वही - पृ. ०५

२०) डॉ० कृष्णकुमार बिस्सा - साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना- पृ. ११८

२१) बालकृष्ण नवीन - 'प्रभा' मार्च १९२५ - पृ. २३

२२) डॉ० सुरेन्द्र यादव - माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता - पृ. ०४

२३) श्रीकर्ण सिंह - भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत - पृ. ७७

२४) डॉ० रत्नाकर - हिन्दी साहित्य:सामाजिक चेतना - पृ. १५९

२५) डॉ० देवराज पथिक - नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना - पृ. १८

२६) नवनीत - मई १९६६ सं. ४६

२७) डॉ० देवराज पथिक	- नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना	- पृ. २२
२८) वही	- वही	- पृ. २३
२९) डॉ० देवराज पथिक	- नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना	- पृ. २६
३०) वही	- वही	- पृ. २७
३१) डॉ० प्रेमलता बाफना	- शोध एंव साहित्यिक निबन्ध	- पृ. १३४
३२) डॉ० मंजुला दास	- प्रसादोत्तर नाटक में राष्ट्रीय चेतना	- पृ. २९५
३३) डॉ० देवराज पथिक	- नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना	- पृ. २७
३४) वही	- वही	- पृ. २७
३५) अथर्ववेद		
डॉ० देवराज पथिक	- नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना	- पृ. २८
३६) वही	- वही	- पृ. ३०
३७) डॉ० सुधीन्द्र	- हिन्दी कविता में युगान्तर	- पृ. २३२
३८) Hans Kohn	- World order in Historical perspective	- पृ. ९३
३९) डॉ० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र	- आधुनिक हिन्दी काव्य	- पृ. २५७
४०) डॉ० मंजुला दास	- प्रसादोत्तर नाटक में राष्ट्रीय चेतना	- पृ. २०६
४१) डॉ० जितराम पाठक	- आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना	- पृ. २३
४२) कृष्णकुमार बिस्सा	- साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना	- पृ. १५३
४३) जितराम पाठक	- आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास	- पृ. २३
४४) मधुमती	- मासिक पत्रिका - दिसम्बर - १९९८	- पृ. ०४
४५) वही	- वही	- पृ. ०४
४६) डॉ० देवराज पथिक	- नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना	- पृ. ४३
४७) मधुमती	- मासिक पत्रिका दिसम्बर १९९८	- पृ. ०४
४८) डॉ० देवराज पथिक	- नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना	- पृ. ४३
४९) मधुमती	- मासिक पत्रिका दिसम्बर १९९८	- पृ. ०४
५०) वही	- वही	- पृ. ०४
५१) वही	- वही	- पृ. ०४
५२) डॉ० रामकुमार वर्मा	- साहित्यशास्त्र	- पृ. ५०
५३) डॉ० गुलाबराय	- काव्य के रूप	- पृ. ०८
५४) डॉ० सुरेन्द्र यादव	- माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता	- पृ. ०७
५५) डॉ० देवराज पथिक	- नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना	- पृ. ३५

५६) डॉ० गोविन्द त्रिगुषायत	- शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त	- पृ. ३५
५७) डॉ० देवराज पथिक	- नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना	- पृ. ३६
५८) वही	- वही	- पृ. ३६
५९) सुरेन्द्र यादव	- माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता	- पृ. ०५
६०) Kohn	- The Idea of Nationalism	- पृ. १८
६१) सुरेन्द्र यादव	- माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता	- पृ. ०६
६२) डॉ० रामनाथ शर्मा	- समाज मनोविज्ञान	- पृ. ४०२